

○ वीतराग-विज्ञान (जुलाई-मासिक) \* 26 जून 2010 • वर्ष 28 • अंक 12

## सम्पादकीय

### नियमसार : एक अनुशीलन

#### नियमसार गाथा ४८

विगत गाथा में यह स्पष्ट करने के उपरान्त कि द्रव्यदृष्टि से संसारी और सिद्ध जीवों में कोई अन्तर नहीं है; अब इस गाथा में यह बताते हैं कि कार्यसमयसार और कारणसमयसार में कोई अन्तर नहीं है। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा ।

जह लोयगो सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया ॥४८॥

( हरिगीत )

शुद्ध अविनाशी अतीन्द्रिय अदेह निर्मल सिद्ध ज्यों।

लोकाग्र में जैसे विराजे जीव हैं भवलीन त्यों ॥४८॥

जिसप्रकार लोकाग्र में स्थित सिद्ध भगवान अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा हैं; उसीप्रकार सभी संसारी जीवों को जानो।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह कार्यसमयसार और कारणसमयसार में कोई अन्तर न होने का कथन है।

जिसप्रकार लोकाग्र में सिद्ध भगवान निश्चय से पाँच शरीरों के प्रपंच के अभाव के कारण अशरीरी हैं, नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण अविनाशी हैं, परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शन-ज्ञानरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपद जानने में समर्थ सहजज्ञानज्योति के द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं - ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण अतीन्द्रिय हैं, मलजनक क्षायोपशमिक विभावस्वभाव के अभाव के कारण निर्मल और द्रव्य-भावकर्मों के अभाव के कारण विशुद्धात्मा हैं; उसीप्रकार संसारी जीव भी किसी नय के बल से शुद्ध हैं।”

गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस गाथा का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“पर्याय को गौण करके देखने पर कारणसमयसार और कार्यसमयसार में कोई

अन्तर नहीं है।<sup>१</sup>

संसारदशा में संसारी जीवों को राग के साथ तथा जिसको जैसा शरीर है, उसके साथ मात्र एक समय का सम्बन्ध है।<sup>२</sup>

उस एक समय की पर्याय को गौण करके देखा जावे तो संसारी भी अशरीरी ही हैं। शरीर के सम्बन्ध को मुख्य करने पर चैतन्य गौण हो जाता है और वही संसार है।<sup>३</sup> चैतन्य को मुख्य करके शरीर-सम्बन्ध को गौण करना ही धर्म है।<sup>४</sup>

सिद्धभगवन्तों ने अशरीरीदशा-मोक्षदशा प्राप्त कर ली है, इसलिए उनके नर-नारकादि भवरूप पर्यायों का त्याग-ग्रहण होता नहीं; जबकि संसार में एक भव के बाद दूसरा भव - इसप्रकार विनाशरूप अवस्था पर्याय में होती है। जिसप्रकार सिद्धों में ऐसा विनाशपना पर्याय में नहीं होता, शरीर का आवागमन नहीं होता, इसलिये वे अविनाशी हैं; उसीप्रकार शुद्धद्रव्यार्थिकनय से देखा जावे तो संसारी जीव भी अविनाशी हैं - ऐसा बताना है।<sup>५</sup>

अल्पज्ञता की एक समय की पर्याय को गौण करके व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा है तथा अनन्त ज्ञान-दर्शन से भरपूर स्वभाव को भूतार्थ कहकर संसारी आत्मा को भी शुद्धनिश्चयनय से अतीन्द्रिय कहा है।<sup>६</sup>

सिद्धभगवन्तों के क्षायोपशमिकभाव, औदयिकभाव तथा औपशमिकभाव का अभाव है, उनके क्षायिकभाव प्रकट हो गया है, अतः जिसप्रकार वे निर्मल हैं; उसीप्रकार शुद्धनिश्चयदृष्टि से देखा जावे तो संसारी भी निर्मल हैं।<sup>७</sup>

जिसप्रकार सिद्धजीवों के समस्त विकार तथा समस्त जड़कर्मों का अभाव है; इसलिए वे विशुद्धात्मा हैं; उसीतरह संसारी जीव को एक समय जितना विकार है, उसका निमित्त जड़कर्म है, बाह्य में देव-शास्त्र-गुरु निमित्त हैं, और पर्याय में क्षयोपशमभाव है; परन्तु उनमें से किसी से भी आत्मा को लाभ नहीं है; अतः उन सबको गौण करके, व्यवहार कहकर, अभूतार्थ कहा है, कारण कि त्रिकाली शुद्धस्वभाव में उन सब का अभाव है; तथा शुद्धद्रव्यार्थिकनय से संसारी जीव भी विशुद्धात्मा ही

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४५२

२. वही, पृष्ठ ४५२

३. वही, पृष्ठ ४५३

४. वही, पृष्ठ ४५३

५. वही, पृष्ठ ४५३-४५४

६. वही, पृष्ठ ४५५

७. वही, पृष्ठ ४५६

हैं - ऐसा स्वीकार करने पर पर्याय में धर्मदशा प्रकट होती है।

शुद्धदृष्टि से देखा जावे तो सिद्ध और संसारी में कोई अन्तर नहीं है - ऐसा ४८वीं गाथा में कहा।<sup>१</sup>

इस गाथा और उसकी टीका में मात्र इतना ही कहा गया है कि जिसप्रकार सिद्ध भगवान पाँच शरीरों से रहित होने के कारण अशरीरी, नर-नारकादि पर्यायों के ग्रहण-त्याग से रहित होने के कारण अविनाशी, संशयरहित प्रत्यक्षज्ञान के धारी होने से अतीन्द्रिय, विभावस्वभाव के अभाव के कारण निर्मल और द्रव्य-भावकर्म के अभाव के कारण विशुद्धात्मा हैं; उसीप्रकार संसारी जीव भी परमशुद्धनिश्चयनय से शुद्ध ही हैं।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

( शार्दूलविक्रीडित )

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं  
शुद्धं कारणकार्यतत्त्वयुगलं सम्यदृशि प्रत्यहम्।  
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक स्वयं  
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम् ॥७२॥

( हरिगीत )

शुद्ध है यह आत्मा अथवा अशुद्ध इसे कहें।  
अज्ञानि मिथ्यादृष्टि के ऐसे विकल्प सदा रहें ॥  
कार्य-कारण शुद्ध सारासारग्राही बुद्धि से।  
जानते सद्दृष्टि उनकी वंदना हम नित करें ॥७२॥

मिथ्यादृष्टियों को आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध है - इसप्रकार की विपरीत कल्पनायें निरन्तर हुआ करती हैं; किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा निश्चय होता है कि कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व - दोनों शुद्ध हैं।

इसप्रकार परमागम के अनुपम अर्थ को जो सम्यग्दृष्टि जीव सारासार की विचार वाली बुद्धि से स्वयं को जानता है; हम सब उसकी वंदना करते हैं।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४५७-४५८

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“धर्मीजीव को ऐसी प्रतीति है कि जिसको कार्य प्रकट हो गया है, वह कार्यपरमात्मा और जो अनादि-अनन्त मेरे में पड़ा है, वह कारण-परमात्मा - इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है, दोनों ही शुद्ध हैं।

पर्याय में शुभाशुभभाव होने पर भी मेरा स्वभाव कभी विकारी हुआ ही नहीं - वह तो सदा शुद्ध ही है।<sup>१</sup>

इसप्रकार भगवान की वाणी से रचित परमागम के गंभीर अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दरबुद्धि से जो सम्यग्दृष्टि मुनि स्वयं को जानते हैं; उन मुनिराजों को हम वन्दन करते हैं।<sup>२</sup>”

इस छन्द में मात्र इतना ही कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव अपेक्षाओं को न समझने के कारण आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध - इसप्रकार के विकल्पों में उलझे रहते हैं; परन्तु सम्यग्दृष्टि जीवों को स्याद्वाद में प्रवीणता होने से वे जानते हैं कि कारणसमयसार (त्रिकाली ध्रुव आत्मा) और कार्यसमयसार (अरहंत-सिद्ध भगवान) - दोनों ही शुद्ध हैं। इसप्रकार सार और असार को जानने की बुद्धि के धनी ज्ञानियों की हम वंदना करते हैं।

### नियमसार गाथा ४९

विगत गाथा में सिद्धों के समान संसारी जीव भी स्वभाव से शुद्ध ही हैं - यह स्पष्ट करने के उपरान्त अब इस गाथा में उक्त तथ्य को निश्चय-व्यवहारनय की भाषा में प्रस्तुत करते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पहुच्च भणिदा हु।

सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा॥४९॥

( हरिगीत )

व्यवहारनय से कहे हैं ये भाव सब इस जीव के।

पर शुद्धनय से सिद्धसम हैं जीव संसारी सभी॥४९॥

उक्त सभी भाव व्यवहारनय से संसारी जीवों में कहे गये हैं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४५९

२. वही, पृष्ठ ४५९-४६०

से तो संसार में रहनेवाले सभी जीव सिद्धस्वभावी ही हैं, सिद्धों के समान ही हैं।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह कथन निश्चय-व्यवहारनयों की उपादेयता का प्रकाशन करनेवाला है।

पहले जिन विभाव पर्यायों के बारे में ऐसा कहा गया था कि वे विद्यमान नहीं हैं; वे सब विभावपर्यायों व्यवहारनय की अपेक्षा से देखें तो विद्यमान ही हैं। इसीप्रकार जिन औदयिकादि विभावभाववाले जीवों को व्यवहारनय से संसारी कहा गया था; वे सभी संसारी शुद्धनय से शुद्ध गुण और शुद्ध पर्यायवाले होने से सिद्धों के समान ही हैं।”

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“प्रमाणभूतज्ञान में शुद्धात्मद्रव्य तथा उसकी पर्यायों का (दोनों का) सम्यक्ज्ञान होना चाहिए। अपने में कथंचित् विभाव पर्यायों विद्यमान हैं - ऐसा स्वीकार ही जिसे न हो, उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मा द्रव्यदृष्टि से शुद्ध है - यह बात ठीक है; फिर भी एक समय का राग पर्याय में बिलकुल है ही नहीं अथवा पर्याय में भी पूर्णता वर्त रही है - ऐसा माने तो पर्याय का सच्चा ज्ञान भी नहीं है; और ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण द्रव्य का प्रमाणज्ञान होता नहीं। स्वभावदृष्टि से कहा जाता है कि वस्तुस्वभाव में त्याग-अत्याग है ही नहीं; परन्तु इस कथन से ऐसा मान बैठे कि पर्याय में भी मुनिपना या वीतरागीपना है तो भ्रम है।<sup>१</sup>

जो जीव पर्याय का ज्ञान यथार्थ नहीं करते, उनका आत्मा का ज्ञान भी यथार्थ नहीं। इसलिये व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करने योग्य हैं - ऐसी विवक्षा से ही नहीं व्यवहारनय को उपादेय कहा है।<sup>२</sup>

(१) त्रिकालीदृष्टि से संसारी जीव को अशरीरी कहा था, वही जीव व्यवहारनय से शरीर के सम्बन्ध वाला है।

(२) त्रिकालीदृष्टि से संसारी जीव को अविनाशी कहा था, वही जीव व्यवहारनय से विनाशीक है। नर-नारकादि पर्यायों का ग्रहण-त्याग उसके होता है।

(३) स्वभावदृष्टि से संसारी जीव को अतीन्द्रिय कहा था, वही जीव व्यवहारनय

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४६२

२. वही, पृष्ठ ४६२

से शरीर वाला है और ज्ञान में इन्द्रियों के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध वाला है।

(४) स्वभावदृष्टि से संसारी जीव को निर्मल कहा था, वही जीव व्यवहारनय से क्षयोपशमादि विभावभाव के कारण मैल वाला है।

(५) स्वभावदृष्टि से संसारी जीव को विशुद्धात्मा कहा था, वही जीव व्यवहारनय से अशुद्ध है, राग-द्वेषरूपी भावकर्मों को निमित्तरूप से द्रव्यकर्मों के सम्बन्धवाला है।<sup>१</sup>

वे सभी विकार के भेद पर्याय में पड़ते हैं, शुद्धदृष्टि से देखा जावे तो अभव्य सहित सभी जीव सिद्ध समान शुद्ध ही हैं। सम्यग्दर्शन का ध्येय त्रिकाली अखण्ड शुद्धात्मा है।<sup>२</sup>

जैसे तिल में तेल शक्तिरूप से है - ऐसा भान न करे, तो तिल पैरने का भाव ही नहीं आ सकता; तथा तिल में तेल शक्तिरूप से है - ऐसा कहा हो, वहाँ पर्याय में भी तेल है - ऐसा मानकर पूड़ी सेकने लगे तो निराशा ही होगी। वैसे ही आत्मा स्वभाव से शुद्ध है - ऐसा विचार न करें तो शुद्ध के लक्ष बिना अशुद्धता टले नहीं; और शक्ति से शुद्ध कहा; इसलिए पर्याय में भी शुद्धता है - ऐसा मान ले तो भी भूल है।<sup>३</sup>

इस गाथा में व्यवहारनय से ज्ञान कराकर पीछे से कहा कि वे सब विभाव विद्यमान होने पर भी शुद्धदृष्टि से सब जीव सिद्ध सदृश हैं। इसप्रकार यथार्थ ज्ञान करके निश्चयस्वभाव का आश्रय करना ही धर्म का कारण है।<sup>४</sup>

इस गाथा और उसकी टीका में यही बात स्पष्ट की गई है कि यद्यपि द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु का स्वरूप समझने के लिए व्यवहारनय की उपयोगिता है; क्योंकि व्यवहारनय का विषय भी लोक में विद्यमान है; तथापि व्यवहारनय के विषयभूत पक्ष के आश्रय से धर्म प्रगट नहीं होता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति नहीं होती। अतः उसके विषय को भलीभांति जानकर, उसमें से अपनापन तोड़कर, परमशुद्ध-निश्चयनय के विषयभूत अपने आत्मा में ही अपनापन स्थापित करना चाहिए।

इसके उपरान्त टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव तथा आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने भी कहा है - ऐसा कहकर एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४६३-४६४

२. वही, पृष्ठ ४६५

३. वही, पृष्ठ ४६६

४. वही, पृष्ठ ४६६

( मालिनी )

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-  
मिह निहितपदानां हंत हस्तावलंबः ।  
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं  
परविरहितमंतः पश्यतां नैष किंचित् ॥२४॥<sup>१</sup>

( रोला )

ज्यों दुर्बल को लाठी है हस्तावलम्ब त्यों ।  
उपयोगी व्यवहार सभी को अपरमपद में ॥  
पर उपयोगी नहीं रंच भी उन लोगों को ।  
जो रमते हैं परम-अर्थ चिन्मय चिद्घन में ॥२४॥

यद्यपि खेद है कि जिन्होंने पहली पदवी में पैर रखा है, उनके लिए व्यवहारनय हस्तावलम्ब है, हाथ का सहारा है; तथापि जो परद्रव्यों और उनके भावों से रहित, चैतन्यचमत्कारमात्र परम-अर्थ को अन्तर में अवलोकन करते हैं, उसकी श्रद्धा करते हैं, उसमें लीन होकर चारित्रभाव को प्राप्त होते हैं; उन्हें यह व्यवहारनय कुछ भी प्रयोजनवान नहीं है ।

जिसप्रकार बीमारी से उठे अशक्त व्यक्ति को कमजोरी के कारण चलने-फिरने में लाठी का सहारा लेना पड़ता है; पर उसकी भावना तो यही रहती है कि कब इस लाठी का आश्रय छूटे । वह यह नहीं चाहता कि मुझे सदा ही यह सहारा लेना पड़े ।

उसीप्रकार निचली दशा में व्यवहार का सहारा लेते हुए भी कोई आत्मार्थी यह नहीं चाहता कि उसे सदा ही यह सहारा लेना पड़े । वह तो यही चाहता है कि कब इसका आश्रय छूटे और कब मैं अपने में समा जाऊँ । बस यही भाव उक्त छन्द में व्यक्त किया गया है ।

इसके बाद मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द स्वयं लिखते हैं, जो इसप्रकार है-

( स्वागता )

शुद्धनिश्चययेन विमुक्तौ संसृतावपि च नास्ति विशेषः ।  
एवमेव खलु तत्त्वविचारे शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति ॥७३॥



( सोरठा )

अन्तर नहीं है रंच, संसारी अर सिद्ध में।

बतलाते यह मर्म, शुद्धतत्त्व के रसिकजन ॥७३॥

शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति और संसार में कोई अन्तर नहीं है। शुद्धतत्त्व के रसिकजन शुद्धतत्त्व की मीमांसा करते हुए ऐसा ही कहते हैं।

उक्त छन्द में यही कहा गया है कि शुद्धतत्त्व के रसिकजनों की दृष्टि शुद्धनयप्रधान होती है। अतः वे तो शुद्धतत्त्व की प्राप्ति की प्रेरणा देते हुए यही कहते हैं कि संसारी और सिद्धों में कोई अन्तर नहीं है।

**नियमसार गाथा ५०**

विगत गाथा में कहा गया है कि पूर्वोक्त वर्णादि सभी भाव यद्यपि व्यवहारनय से जीव के कहे गये हैं; तथापि शुद्धनय से संसार में रहनेवाले सभी जीव सिद्धों के समान स्वभाववाले ही हैं और अब इस गाथा में यह कहा जा रहा है कि पूर्वोक्त सभी भाव परस्वभाव होने से परद्रव्य हैं; इसलिए हेय हैं और अन्तःतत्त्वरूप स्वद्रव्य उपादेय हैं।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

पुवुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।

सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥५०॥

( हरिगीत )

हैं हेय ये परभाव सब ही क्योंकि ये परद्रव्य हैं।

आदेय अन्तस्तत्त्व आत्म क्योंकि वह स्वद्रव्य है ॥५०॥

पूर्वोक्त सभी भाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं; इसलिए हेय हैं तथा अन्तःतत्त्वरूप आत्मा स्वद्रव्य है; अतः उपादेय है।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह हेयोपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है। पहले ४९वीं गाथा में जिन विभाव गुणपर्यायों को व्यवहारनय से उपादेय कहा था; वे सभी विभावगुणपर्यायें शुद्धनिश्चयनय से हेय हैं; क्योंकि वे पर-स्वभाव हैं; इसलिए परद्रव्य हैं। तथा सभी प्रकार की विभावगुणपर्यायों से रहित शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप अपना आत्मा स्वद्रव्य होने से उपादेय है।

वस्तुतः बात यह है कि सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजपरमवीतराग-सुखात्मक शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य का आधार सहजपरमभावलक्षणवाला कारणसमयसार है।”

इस गाथा और उसकी टीका के भाव को स्पष्ट करते हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी कहते हैं -

“समयसार गाथा ११ में कहा है कि व्यवहारनय अभूतार्थ है और भूतार्थ (शुद्धनय) का आश्रय करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि है। यहाँ भी यही कहना है कि त्रिकाली ध्रुवस्वभाव सामान्य है और उदयादि चार भाव विशेष हैं। विशेष के अवलम्बन से लाभ नहीं; इसलिए विशेष को परद्रव्य कहकर सामान्य एकरूप स्वभाव के आश्रय से लाभ है - ऐसा कहा है। जो जीव व्यवहार में रुचि रखते हैं - उनसे कहा है कि उसके आश्रय से लाभ नहीं है, शुद्ध के आश्रय से लाभ है।

पैसा, कुटुम्बादि परद्रव्य हैं, देव-गुरु-शास्त्र भी परद्रव्य हैं और यहाँ अपनी एक समय की पर्याय को भी परद्रव्य कहा है, कारण कि उसका आश्रय लेने से मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। एक चैतन्यस्वभाव अन्तःतत्त्व ही स्वद्रव्य है।

किसी की भक्ति या कृपा से धर्म हो अथवा राग और पुण्य के आश्रय से धर्म हो - ऐसा तो है ही नहीं; किन्तु यहाँ तो कहते हैं कि तेरी पर्याय की कृपा से या उसके आश्रय से भी धर्म नहीं होता। पर्यायवान् द्रव्यस्वभाव की कृपा से - उस एक की ही कृपा से धर्म होता है।<sup>१</sup>

यहाँ कोई प्रश्न करे कि क्षायिकादि भाव को परद्रव्य क्यों कहा ?

उससे कहते हैं कि भाई, सुनो! उन भावों का विचार करने पर राग उत्पन्न होता है; अतः पर्यायबुद्धि छुड़ाने के प्रयोजन से उसे व्यवहार कहकर, गौण करके, अभूतार्थ कहा, परद्रव्य कहा, हेय कहा और भूतार्थ शुद्धद्रव्य को स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा, कारण कि उसके आश्रय से धर्म होता है।<sup>२</sup>

त्रिकाली सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजपरमवीतरागी सुखरूप अन्तःतत्त्व है। शुद्धभाव, शुद्धस्वभावभाव है और उसका आधार परमपारिणामिक-भाववाला कारण समयसार है। सहजज्ञान-दर्शन कहकर भिन्न-भिन्न गुणों के भेद

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४७२

२. वही, पृष्ठ ४७३

समझाए थे। उनका आधार कारणपरमात्मा कहकर अभेद कह दिया। स्वद्रव्य में ज्ञानदर्शनादि चार भेद से समझाया है और उनको अभेद करके कारणसमयसार कहा। यही सम्यग्दर्शन के लिए उपाय है - यही धर्म का कारण है।

वास्तव में शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप कारणपरमात्मा उपादेय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय अथवा मोक्ष की पर्याय भी आदरणीय नहीं, कारण कि वह कार्यरूप है; कार्य में से कार्य प्रकट होता नहीं, अथवा पर्याय में से पर्याय नहीं आती; इसलिए स्वभाव शुद्ध त्रिकाल एकरूप है - वह कारण है, उसमें से कार्य आया है। कार्य उपादेय नहीं, किन्तु कारणपरमात्मा उपादेय है। पर्याय के ऊपर का लक्ष छुड़ाने के प्रयोजन से उस पर्याय को परद्रव्य कहकर, एकरूप शुद्धस्वभाव को स्वद्रव्य मानकर आदरणीय कहा है।<sup>१</sup>

इसप्रकार इस गाथा में यह कहा गया है कि पर और पर्याय से रहित, परम-शुद्धनिश्चयनयका विषयभूत, त्रिकालीध्रुव अपना आत्मा ही एकमात्र उपादेय है, अपनापन स्थापित करने योग्य है, आराधना करने योग्य है, ध्यान का ध्येय है। अतः समस्त जगत से दृष्टि हटाकर एकमात्र निज-शुद्धात्मा पर केन्द्रित करने में ही सार है, शेष सब असार है, संसार है।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव 'तथा आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने भी कहा है' - ऐसा कहकर एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

( शार्दूलविक्रीडित )

सिद्धान्तोऽमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां  
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।  
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-  
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥२५॥<sup>२</sup>

( हरिगीत )

मैं तो सदा ही शुद्ध परमानन्द चिन्मयज्योति हूँ।  
सेवन करें सिद्धान्त यह सब ही मुमुक्षु बन्धुजन॥  
जो विविध परभाव मुझ में दिखें वे मुझ से पृथक्।  
वे मैं नहीं हूँ क्योंकि वे मेरे लिए परद्रव्य हैं॥२५॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४७३

२. समयसार आत्मख्याति कलश - १८५

जिनका चित्त और चरित्र उदार हैं - ऐसे मोक्षार्थी के द्वारा इस सिद्धान्त का सेवन किया जाना चाहिए कि मैं तो सदा एक शुद्ध चैतन्यमय परमज्योति हूँ और मुझसे पृथक् लक्षणवाले विविधप्रकार के जो भाव प्रगट होते हैं; वे मैं नहीं हूँ; क्योंकि वे सभी मेरे लिए परद्रव्य हैं।

इस छंद का भाव स्पष्ट करते हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी कहते हैं-

“और जो भिन्न-भिन्न लक्षणवाले दया-दान-हिंसा-झूठ-चोरी आदि के भाव होते हैं - वे मैं नहीं हूँ तथा जो नई-नई निर्मल पर्यायें उत्पन्न होती हैं - वे भी मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सब परद्रव्य हैं। निर्मलतारूपी कार्य पर्याय में होता है, किन्तु पर्याय से पर्याय प्रकट नहीं होती; अतः पर्याय को परद्रव्य कहा है। जब पर्याय स्वद्रव्य की तरफ ढलती है तब धर्मदशा प्रकट होती है, इसलिए त्रिकालीस्वभाव को स्वद्रव्य कहा है।

यहाँ यह बताया है कि जिसको दानी बनना हो अर्थात् अपनी निर्मल पर्याय का दान अपने को देना हो, वह इस अभिप्राय का सेवन करे कि एक समय की पर्याय जानने योग्य तो है, किन्तु आदर करने योग्य नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय का पुण्यपरिणाम भी उदार नहीं है और एक समय की पर्याय भी उदार नहीं है, त्रिकालीस्वभाव एक ही उदार और आदर करने योग्य है। पर्याय तो एक के बाद एक होती है, उसके लक्ष से अनेकता होती है, अतः सभी पर्यायें परद्रव्य हैं। इसलिए अनेक का लक्ष छोड़कर एकरूप द्रव्य की श्रद्धा-ज्ञान करो - यही एक धर्म का कारण है।”

उक्त कलश में यही बात कही गयी है कि जो मोक्षार्थी हैं, मुमुक्षु हैं, जिन्हें दुःखों से मुक्त होने की आकांक्षा है; उन्हें इस महान सिद्धान्त पर अपनी श्रद्धा दृढ करना चाहिए और इसी के अनुसार आचरण भी करना चाहिए।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द स्वयं लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

( शालिनी )

न हास्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-  
दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।  
इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४७५

सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम् ॥७४॥

( सोरठा )

वे न हमारे भाव, शुद्धातम से अन्य जो।

ऐसे जिनके भाव, सिद्धि अपूर्व वे लहें ॥७४॥

शुद्धजीवास्तिकाय से भिन्न अन्य जो पुद्गलद्रव्य के भाव हैं; वस्तुतः वे सभी हमारे नहीं हैं, जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से इसप्रकार कहते हैं; वे सभी अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

इस छन्द का भाव स्वामीजी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“शुद्धजीवास्तिकाय कहो, कारणसमयसार कहो, त्रिकालध्रुव-स्वभाव कहो, नित्य कहो, त्रिकालकारणशुद्धजीव कहो, सभी एकार्थ-वाचक हैं। शुद्धजीव के अतिरिक्त पर्याय में होनेवाले दया-दानादि के भाव वास्तव में हमारे नहीं हैं, विकार तथा ज्ञान का हीनपना भी हमारा स्वरूप नहीं है; यह सब पुद्गल के लक्ष से होनेवाले भाव हैं; अतः पुद्गलद्रव्य के ही भाव हैं, शुद्धजीव के भाव नहीं हैं - ऐसा तत्त्व के ज्ञायक स्पष्टतया कहते हैं अर्थात् मानते हैं और वे ही पूर्व में कभी नहीं प्रकट हुई ऐसी मुक्तिदशा को पाते हैं।”

उक्त छन्द में यही कहा गया है कि जो व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि मैं तो शुद्धजीवास्तिकाय ही हूँ, अन्य कुछ भी नहीं; वही व्यक्ति आत्मोपलब्धिरूप अपूर्व सिद्धि को प्राप्त करता है।

नियमसार गाथा ५१-५५

विगत गाथा में यह कहा गया है कि दृष्टि के विषयभूत और ध्यान के ध्येय तथा परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत भगवान आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी उपादेय नहीं है।

अब आगामी गाथाओं में उक्त उपादेय भगवान आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होने वाले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। गाथायें मूलतः इसप्रकार हैं-

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥५१॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ४७६

चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।  
 अधिगमभावो णाणं हेयोवादेयतच्चाणं ॥५२॥  
 सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।  
 अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥५३॥  
 सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।  
 ववहारणिच्छयएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि ॥५४॥  
 ववहारणयचरित्ते ववहारणयस्स होदि तवचरणं ।  
 णिच्छयणयचारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥५५॥

( हरिगीत )

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।  
 विभ्रम संशय मोह विरहित ज्ञान ही सदज्ञान है ॥५१॥  
 चल मल अगाढ़पने रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।  
 आदेय हेय पदार्थ का ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है ॥५२॥  
 जिन सूत्र समकित हेतु पर जो सूत्र के ज्ञायक पुरुष।  
 वे अंतरंग निमित्त हैं दृग मोह क्षय के हेतु से ॥५३॥  
 सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान पूर्वक आचरण है मुक्तिमग।  
 व्यवहार-निश्चय से अतः चारित्र की चर्चा करूँ ॥५४॥  
 व्यवहारनय चारित्र में व्यवहारनय तपचरण हो।  
 नियतनय चारित्र में बस नियतनय तपचरण हो ॥५५॥

विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान ही सम्यग्ज्ञान है और संशय, विमोह और विभ्रम रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

चल, मल और अगाढ दोषों से रहित श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है तथा हेय और उपादेय तत्त्वों का जाननेरूप भाव ही सम्यग्ज्ञान है।

सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है और जिनसूत्र के ज्ञायक पुरुष सम्यग्दर्शन के अंतरंग हेतु कहे गये हैं; क्योंकि उनके दर्शनमोह के क्षयादिक होते हैं।

मोक्ष का कारण सम्यक्त्व है, सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित्र है; इसलिए मैं व्यवहार और निश्चयचारित्र का निरूपण करूँगा।

व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है और निश्चयनय के

चारित्र में निश्चयनय का तपश्चरण होता है।

इन गाथाओं का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। भेदोपचाररत्नत्रय इसप्रकार है। विपरीत अभिप्राय से रहित श्रद्धानरूप, सिद्धि का परम्परा हेतुभूत; भगवंत पंचपरमेष्ठी के प्रति; चल, मल और अगाढ - दोषों से रहित; निश्चल भक्ति ही सम्यक्त्व है।

इसका अर्थ यह है कि विष्णु-ब्रह्मादि द्वारा कहे हुए विपरीत पदार्थ समूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव ही सम्यक्त्व है।

इसीप्रकार संशय, विमोह और विभ्रम रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

देव शिव हैं या जिन हैं - इसप्रकार का शंकारूप अनिश्चय का भाव संशय है। शाक्यादि (बुद्धादि कथित वस्तु) में निश्चय विमोह (विपर्यय) है और वस्तुस्वरूप के संबंध में अज्ञानपना (अज्ञान) ही विभ्रम (अनध्यवसाय) है।

इसीप्रकार पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम चारित्र है। उक्त सभी भेदोपचार रत्नत्रय परिणति है।

उसमें जिनप्रणीत हेयोपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

इस सम्यक्त्व परिणाम का बाह्य सहकारीकारण वीतराग-सर्वज्ञ के मुख कमल से निकला हुआ, समस्त वस्तुओं के प्रतिपादन में समर्थ द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है और जो ज्ञानी धर्मात्मा मुमुक्षु हैं; उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय में हेतुपने के कारण अंतरंग हेतु (निमित्त) कहा है; क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।

उन भेद अनुपचार रत्नत्रय परिणतिवाले जीव को; टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक-स्वभावरूप निजपरमतत्त्व के श्रद्धान से, उस परमतत्त्व के ज्ञानरूप अन्तर्मुख परमबोध से और उस परमतत्त्व में अविचल स्थितिरूप सहज चारित्र से अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।

जो परम जिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय से चारित्र में स्थित होते हैं; उन्हें व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है।

सहज निश्चयनयात्मक परमस्वभावरूप परमात्मा में प्रतपन तप है। उस परम योगीश्वर को निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप इस सहज तप से निश्चयचारित्र होता है।”

(क्रमशः)

